अध्याय चौथा

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढाय नमः॥

"जिनकी कृपा से आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है ऐसे श्री सतगुरुजी को किस प्रकार प्राप्त किया जाता है तथा स्वकष्टों से उनकी सेवा किस प्रकार की जाती है ये परमपवित्र श्री सिद्धारूढ स्वामीजी ने स्वयं एक मिसाल बनकर दुनिया को दिखाया।"

जिसके दर्शन की मन में कामना करते हुए देवीदेवताएँ कठोर तपस्या करते हैं और जिसके चरणतीर्थ से त्रिभुवन परमपवित्र हो जाते हैं ऐसे दयाघन स्वयं आप श्री सिद्धराज है। हालाँकि आप स्वयं ज्ञान से परिपूर्ण थे, फिर भी दुनिया को गुरुशिष्यपरंपरा (शिष्य का गुरु के घर में होनेवाला व्यवहार) के प्रति बोधित करने के एकमात्र भाव से आप सतगुरुजी की खोज में निकले थे।

अस्तु। इसप्रकार भीम और सोम गाँव लौट जाने के बाद सिद्ध अकेला ही मार्गपर आगे चलने लगा। रास्ते में वह लोगों से पूछताछ करके जहाँ जहाँ भी साधुसंतों का निवास स्थान हो, वहाँ जाकर उनके दर्शन लेकर आगे बढ़ता था। इस प्रकार घूमते घूमते वह हैदराबाद तथा गोवळकोंडा इन स्थानों तक पहुँच गया, परंतु सतगुरुजी से उसकी मुलाकात कतई नही हो पाई। आखिरकार, वह तिमिरलंका में स्थित एक गुफा में जाकर बैठा। उसी गुफा में उसने अनेक दिन ध्यानधारणा में व्यतित किए। इस प्रकार एकाग्रचित्त से ध्यानधारणा करने के प्रसाद के रूप में उसे अपने सतगुरुजी का स्थान निश्चित रूप से ध्यान करते समय ज्ञात हो गया। जिस भारतवर्ष में दक्षिण दिशा की ओर मुडकर ऋषिमुनियों को शास्त्रों के पाठ पढाने वाले भगवान श्री शिवजी (दक्षिण भारत में श्री शिवजी को दक्षिणामूर्ति के नाम से संबोधित करते हैं) निवास करते हैं और जहाँ पारंपारिक पद्धति से गुरुजन शिष्योंको ज्ञान प्रदान करते हैं, उसी स्थान जाकर सतगुरु प्राप्ति होगी ऐसा उसे विश्वास हुआ। उसके उपरांत, सिद्ध श्रीशैल तीर्थ पहुँच गया। वहाँ वह मठाधिपती तथा सूर्यकांत कंकरों से (विशेष गुणों से पूर्ण) बने सिंहासन पर विराजमान स्वामीजी से मिला। सिद्ध ने उन्हे आत्मज्ञान प्राप्ति के साधन तथा किस प्रकार चित्तशुद्धि की जाती है इन विषयों के बारे में

पूछा, उस समय इन विषयों पर बहुत देर तक चर्चा हुई। उस स्वामीजी के मन में विचार आया की यह बालक कई जन्मों से योगसाधना करता रहा होगा, और उन संस्कारों के कारण इस जन्म में बचपन से ही आत्मज्ञान प्राप्ति हेतु साधना कर रहा होगा; या यह भगवान का अंश होगा, ऐसा सोचकर उन्होने सिद्ध की आदरपूर्वक पूजा की। वह पूजा स्वीकार करके सिद्ध आगे चला। सिद्ध मन ही सोच रहा था, "सतगुरुजी ब्रह्मज्ञानी हो तथा वह वेदशास्त्रों में पूर्णरूप से निपुण हो, जो उपनिषदों का अर्थ दूसरों को स्पष्ट रूप से बयान कर सके और मुमुक्षुओं को बोधामृत पिला सके।" ऐसा भाव मन में रखते हुए सिद्ध राचोटी नाम के स्थान पहुँचा। वहाँ उसने वीरभद्र तथा नवनंदी इनके दर्शन किए और वह दक्षिण दिशा की ओर चल पडा।

आजतक सतगुरुजी से मुलाकात नही हुई इसका दुख होते हुए भी, उसकी ओर ध्यान दिए बिना तथा अन्नजल भी त्यागकर उसने अपने ही शरीर को दंड देना शुरू किया, जिससे सभी वासनाओं का विनाश होकर उसकी पूर्णरूप से चित्तशुद्धि हुई। ऐसी ही अवस्था में, जिसकी कृपा से मोह माया पूर्ण रूप से नष्ट होकर, केवल एक ही एक सत्य होने वाले ब्रह्म का प्रकाश चारो ओर फैलता है, ऐसे सतगुरुजीं का हृदय में निरंतर ध्यान करते हुए, उसने अनेक तीर्थों को दर्शन किया। परंतु, अबतक सतगुरुजी से मुलाकात न होने के कारण सिद्ध मन ही मन दुख से व्याकुल हो उठा और बोला, "हे प्रभो, क्या कारण है की सतगुरु महाराजजी मुझसे अबतक दूर है? हे भगवान, कृपा करके एकबार इस बालक को सतगुरुजी के परमपवित्र चरणों का दर्शन हो जाए, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ," ऐसा कहते हुए वह दुख के आवेग से जमीन पर गिर गया। उसी क्षण उसके मन की आँखो से उसने देखा की सतगुरुजी ने उसे गले लगाते हुए कहा, "हे बालक, धीरज मत खोना," परंतु जब उसने आँखे खोली तब सामने कोई भी नही था| यह देखकर कराहते हुए सिद्ध जमीन पर लेटा रहा और बोला, "हे सतगुरुमाता, मैं आप ही का दुधमुँहा बच्चा होते हुए भी आप इस बच्चे परीक्षा क्यों ले रही है? सतगुरुनाथजी आप कहाँ छुपे हुए हो? जल्दी से आकर मुझ से मिलिए। अब मुझसे सब्र करना संभव नही। आपकी खोज में तथा आपके चरणकमलों की प्राप्ति की कामना लेकर मन ही मन व्याकुल होकर मैं

दिनरात भटक रहा हूँ। परंतु, मुझे आपका ठिकाना नही मिल रहा है। हे गुरुमाता, अब शीघ्र ही आप मुझसे आकर मिलिए और भासमान होनेवाली इस माया का विनाश करके मुझे ब्रह्मज्ञान प्राप्तिका मार्ग दिखाईए। आपके बिना मेरा रक्षण करनेवाला कोई भी न रहने के कारण, मैं अनन्य भाव से आप की शरण में आया हूँ। आप ही अगर मुझे इस प्रकार त्याग देंगे, तब इस भवसागर में कौन मेरी रक्षा करेगा? अब अगर आप मुझे आकर नही मिले, तो मैं आप ही पर मेरा मन केंद्रीभूत करते हुए निश्चित रूप से मेरे प्राण त्याग दूँगा।" ये कहते कहते बाल सिद्ध के आँखों से झरझर आँसू बहने लगे; आँखे मूँदकर वह वही लेटा रहा। उसी समय दयालु ईश्वर वहाँ प्रकट हुआ। एक वृद्ध साधु का रूप धारण करके वह सिद्ध के पास आकर खड़ा रहा, उसका हाथ थामकर उसे उठाया और बोला, "हे बालक, तुम कौन हो?"

सिद्ध ने कहा, "बहुत खोजने के उपरांत भी मुझे सतगुरुनाथ जी नहीं मिले। हे भगवान, हे दीनबंधो, मैं तुम्हे अनन्य भाव से शरण आया हूँ। अति शीघ्र मेरी मुलाकात सतगुरुजी से हो वर्ना मेरे प्राण इस शरीर को छोड़ कर चले जाएँगे।" ये सुनकर गद्‌गद् हुए उस साधु ने कहा "हे बालक, इस धरतीपर स्थित मनुष्यप्राणियों में एक तुम ही धन्य हो, तुमने अपने भक्ति से सतगुरुजी को वश में किया है। इस धरतीपर स्थित सभी मनुष्यप्राणी विषय उपभोग के लिए विविध वस्तुओं की प्राप्ति की मन में आस लिए रहते हैं, तुम एकमात्र अपने सतगुरुनाथजी की खोज में लगे हो। मैं तुम्हे निश्चयपूर्वक कहता हूँ की अब विशेष विलंब के बिना तुम्हे तुम्हारे सतगुरुजी मिलेंगे। इसलिए तुम अब भगवान श्री मल्लिकार्जुन (श्री शिवजी का एक नाम) स्थित श्रीशैल तीर्थ जाओ। वहाँ से अमरगुंड के समीप स्थित गुडगुंटी गाँव के कट्टे मठ के स्वामीजी से मुलाकात कर लो। उस स्वामीजी का शुभनाम गजदंड है और वह वेदांत शास्त्रों के प्रकांड पंडित होते हुए पारमार्थिक क्षेत्र के एक अधिकारी व्यक्ति है। उन्हे कर्म, उपासना (भक्ति) तथा ज्ञान इन तीनो मार्गों का शास्त्रोक्त ज्ञान है और सब कहते हैं की उनकी विद्‌या तथा ज्ञान सर्वोत्तम है। अगर तुम ऐसे स्वामीजी को अपने सतगुरुजी स्वीकार कर उनकी सेवा करोगे, तो तुम्हे आत्मज्ञान प्राप्ति होगी। वह देख, उस पार पहाड़ के तलहटी में ही स्वामीजी का निवास स्थान है

जो नजदीक ही है।" इसप्रकार उंगली से निर्देश करके वह जगह दिखाने के पश्चात वह वृद्ध अंतर्धान हो गया।

सिद्ध को लगा की वह एक सपना होगा। वह मन ही मन बोला की हालाँकि मेरी सतगुरुजी से मुलाकात हो गई, परंतु मायामोहवश मैं वे मेरे सतगुरुजी है यह भी नही समझ पाया और मैं ने उन्हे प्रणाम तक नही किया। फिर भी जैसा उन्होने बताया उसीको सतगुरु आज्ञा समझकर उन्होने निर्दिष्ट की हुई जगह जाकर श्री गजदंड स्वामीजी से मिलकर उन से सेवा माँगना अच्छा रहेगा।

उसी दिन सिद्ध गुडगुंटी गाँव पहुँचा और मंदिर के बाहर दीन भाव से गुरु महाराज की राह देखता खड़ा रहा। ईश्वर की पूजा होने के पश्चात श्री गजदंड स्वामीजी बाहर आए, उन्हे देखते ही सिद्ध ने उनको साष्टांग प्रणाम किया। परिशुद्ध हृदय से तथा अति विनम्रता पूर्वक हाथ जोडकर सिद्ध उनके सामने खड़ा होकर बोला, "हे सतगुरु महाराज, आप साक्षात ब्रह्मानंद हैं और आप सब को सुखी करते हैं, ऐसी आप की कीर्ति है। आप स्वयं परिपूर्ण ज्ञान की मूर्ति हैं और क्रोधलोभादि व्दंव्द भावनाओं से परे हैं। अमर्याद आकाश की तरह आप का स्वरूप ('स्वरूप' यानी आत्मज्ञान अथवा आत्मा का सच्चा रूप) भी अमर्याद है। ब्रह्म जो नित्य, शाश्वत तथा सत्य है, वही आप का रूप है। प्रवृत्तियों का लोप होने के कारण आप साधारण संसार के परे हैं| अखंड़ और सत्य होनेवाला ब्रह्म यही आप का स्वरूप हैं। आप सभी प्राणियों के हृदय में निवास करनेवाले परमात्मा हैं। आप मन, बुद्धि तथा सत्व, रज और तम इन त्रिगुणों के भी परे हैं। हालाँकि यह आप का स्वरूप है, फिर भी सगुण रूप धारण कर आप जड़ जीवात्माओं का उद्धारक बनकर ज्ञानदाता बने हैं। माया से त्रस्त होने के कारण मैं आप को अनन्य भाव से शरण आया हूँ। अगर आप की कृपा से मेरा उद्धार नही हुआ तो इस दुनिया में जन्म पाकर मेरा जन्म निश्चित ही व्यर्थ हो जाएगा। संसार यही भ्रांति है इस कल्पना को जडमूल से उखाडने हेतु तथा मेरा उद्धार करने के लिए आप कृपा कर के उपाय दीजिए।" इस प्रकार करूणता से भरी उसकी प्रार्थना सुनकर स्वामीजी को मन ही मन उसपर तरस आया। परंतु फिर भी सतगुरु के चरणों पर सिद्ध का दृढ़ विश्वास तथा भक्ति है या नही इसे

आजमाने के लिए उन्होने सिद्ध को देखकर अनदेखा किया और कहा, "दूर हो जाओ।" परंतु इस बात से खिन्न न होते हुए वह सतगुरुजी के मठ में गया और अभिमानरहित होकर उनकी सेवा करने लगा।

वह हररोज घोड़ों का अस्तबल झाडू लगाकर साफ करता तथा अपने हाथों से घोडों की लीद निकालकर अस्तबल को पोंछकर साफ करता था। मठ के आंगन में पड़ा कूडा साफ करके वहाँ जल छिडकता। सतगुरु महाराजजी के स्नान के लिए पानी तथा खाना बनाने के लिए लकडियाँ लाता। वह रसोईघर के बर्तन माँजने के लिए हररोज नदी किनारे ले जाता था। वहाँ वह सारे बर्तन अच्छी तरह से माँजकर ले आता था। उसी प्रकार वह गुरुकुल में स्थित सभी के कपड़े धोता था। इतना ही नही, वह बडे आदरपूर्वक गुरुसेवकों की भी सेवा करता था। सतगुरुजी को देखते ही वह साष्टांग प्रणाम करता तथा गुरुजी की नजर से नजर न मिलाते हुए विनम्रता पूर्वक व्यवहार करता। एक नियम का वह बडे निश्चयता पूर्वक पालन करता, जिसके अनुसार वह दोपहर के समय गाँव में जाकर पाँच घरों से भिक्षा माँगकर उस भिक्षा में मिला अन्न सेवन करता लेकिन गुरुगृह में बनाया हुआ खाना कतई न खाता। उसने स्वयं के शरीर के आराम के विषय में कभी ध्यान नही दिया, सिवाय उसने समय समय पर भोजन, वस्त्र आदि मिल पाएँगे या नही इसकी चिंता करना पूरी तरह से छोड़ दिया था। अगर दयालु लोग उसे वस्त्र देते तो वह वे अस्वीकार करता, तथा हररोज मठ में शांती से बैठकर वह वेदांत शास्त्रों पर होनेवाले प्रवचन सुनता था| इस प्रकार उसका आचरण हो रहा था की एक दिन एक आश्चर्यजनक घटना घटी।

एक दिन सुब्बय्याशास्त्री नाम के सभी वेदांत शास्त्रों में निपुण एक महान पंडित गजदंड स्वामीजी की सभा में पधारे। उन्होने भरी सभा में एक प्रश्न पूछा, "जब 'उपनिषत्' इस शब्द का यथार्थ रूपसे अर्थ बताने वाला सारी दुनिया में कोई भी नही है तो उसपर व्याख्यान देनेवाला कोई अधिकारी मनुष्य होगा क्या?" उनकी बात सुनकर सभी सभासद आश्चर्य से दंग रह गए। सतगुरुनाथजी मन ही मन हँसकर बोले की वास्तव में यह मनुष्य पांडितदम्भी है, इसका घमंड तोड़ देना चाहिए। तत्क्षण सिद्धनाथ खड़ा रहा और सतगुरुनाथजी के सामने

विनम्रता पूर्वक हाथ जोडकर बोला, "स्वामीजी, आप मेरी एक बिनती सुनिए। अगर आप मुझे आज्ञा दें, तो मैं इस पंडित के शब्दों का खंडन कर दिखाऊँगा।" उसकी बात सुनकर सतगुरुजी ने उसे अनुमति दे दी। तब सिद्ध ने शास्त्रीजी से कहा, "'उपनिषत्' इस शब्द से आत्मा तथा परब्रह्म इन दोनों की एकरूपता ध्वनित होती है। उसी प्रकार आत्मा और ब्रह्म में एकरूपता कराने वाली विद्या इस प्रकार भी उपनिषदों का बयान किया है।" ये सुनकर शास्त्रीजी ने सिद्ध से पूछा, "उपनिषदों को विद्या कैसे कहा जा सकता है?" तब सिद्ध ने कहा, "उपनिषदें ही तो सच्ची विद्या है, क्योंकि मुमुक्षु इंद्रिय निग्रह करके परिपूर्ण श्रद्धा तथा शुद्ध मन से गुरुजी के प्रबोधन से प्राप्त हुए उपनिषदों के वाक्यों के अर्थ का चिंतन करता है। तब उसके हृदय में आत्मज्ञान का प्रकाश फैलता है, जिससे अविद्या या माया पूर्णरूप से नष्ट होकर जीवात्मा का भवबंधन टूट जाता है। 'उपनिषद' और 'ज्ञान' इन दोनो शब्दों का अर्थ एक ही होते हुए उन दोनों से होनेवाला परिणाम भी एक ही है अर्थात वह जीवात्मा की अविद्या का निराकरण करना है। सभी जीवात्माएँ आत्मज्ञान के समान अधिकारी होने के कारण उपनिषदों पर विचार तथा चिंतन करने का भी सबको समान अधिकार है इस में यत्किंचित् भी संदेह नही।" ज्ञानसंपन्न तथा प्रौढ़ मनुष्य की भाँति किया हुआ यह सिद्ध का कथन सुनकर सुब्बय्यशास्त्री दंग रह गए और बोले, "इस ने कई जन्मों में विद्यामूर्ति (श्री गणेशजी) की ध्यानधारणा की होगी अन्यथा इस प्रकार की ब्रह्मविद्या इस आयु में प्राप्त होना असंभव ही है; यह ज्ञान इसने अपने पूर्वजन्म में ही पाया है।" ऐसा कहकर सुब्बय्याशास्त्री वहाँ से हर्षित होकर चले गए और मन में लेश भर भी गरूर का अनुभव किए बिना सिद्ध फिर एक बार कोने में जा बैठा।

सिद्ध की वेदांतशास्त्रों में निपुणता, उसकी गर्वरहित वृत्ति तथा उसकी अनन्य भाव से की हुई सेवा देखकर सतगुरुजी गजदंड स्वामीजी बहुत आनंदित हुए। उस दिन के बाद सतगुरुजी सिद्ध को अपने पास बिठाकर उसे सवाल पूछते थे। एकबार सिद्ध ने सतगुरुजी से पूछा, "महाराज, षट्शास्त्रों का अर्थ दृढ़ता पूर्वक ज्ञात होने की निशानी क्या है, यह कृपा करके आप मुझे बताईए।" आनंदित होकर सतगुरुजी ने कहा, "सुन सिद्ध, दृढ़ साधना करने के पश्चात

जिसे षट्शास्त्रों का निश्चित रूप से अर्थ ज्ञात हुआ है ऐसे मनुष्य की निशानी मैं तुम्हें कथन करता हूँ। ऐसे मनुष्य को ब्रह्मात्मभाव (यानी मैं ही ब्रह्म हूँ ऐसी दृढ़ भावना मन में होना) प्राप्त होता है तथा ऐसा मनुष्य संदेह और भावनारहित होता है।" यह सुनकर सिद्ध ने सतगुरु से विनम्रतापूर्वक फिर एक प्रश्न किया, "गुरुजी, मुझे बताईए की अहं और आत्मा इन दो भिन्न चीजों में एकरूपता कैसे होगी?" सतगुरुजी ने कहा, "जबतक शरीर धारण किए हुए जीवात्मा की देहबुद्धि जागृत होती है तब तक उसे व्दैत का आभास होता रहता है। जिस पल जीवात्मा का देहाभिमान नष्ट हो जाता है उसी पल उसे उसने धारण किए शरीर से वह भिन्न है इसका विश्वास होता है। तभी अहं और आत्मा में एकरुपता संभव होती है।" उसपर सिद्ध ने फिर प्रश्न किया, "सतगुरु महाराज, सभी संसार हमें अपनी आँखो से प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हुए भी सबकुछ मिथ्या या माया है यह निश्चयता पूर्वक कैसे कह सकते है?" सदगुरुजी ने कहा, "अच्छा बताओ, यह अखिल ब्रह्मांड ज्ञानेंद्रियों से, मन के स्वभावों से या ब्रह्म से व्याप्त है? अगर तुम कहते हो की ज्ञानेंद्रियों से व्याप्त है तब वे भौतिक तथा अचेतन होने कारण उनसे ब्रह्मांड व्याप्त नहीं हो सकता। अगर कहते हो की मन के स्वभावों से व्याप्त है तो उनके कारण किसी भी प्रकार की ज्ञानप्राप्ति संभव नहीं है। अचेतन हुए मन के गुणों या स्वभाव से अचेतन हुए घड़े (अर्थात शरीर) को व्याप्त किया भी हो, फिर भी उन मन के गुणों को घड़ा या शरीर का ज्ञान नहीं होता, जिस प्रकार घड़े पर आच्छादित वस्त्र को घड़े का ज्ञान नहीं होता। अगर कहते हो की अखिल ब्रह्मांड चैतन्य या ब्रह्म से व्याप्त है, तब वह सहज संभव है, क्योंकि अंदर बाहर चैतन्य ही व्याप्त है। विषय तथा मन के गुणों में भी निश्चित रूपसे चैतन्य ही व्याप्त है। केवल भौतिक दुनिया में रहकर उसी की अनुभूति लेने के कारण, एकरूपता का ज्ञान प्राप्त न होने की वजह से, इस दृश्य जगत को सत्य नहीं कहा जा सकता। अगर दृश्य जगत को असत्य या विचार कहते हो तो, जिस प्रकार असत्य विचार सत्य नहीं हो सकता, उसी प्रकार, असत्य समझ या विचार के व्दारा निर्माण हुई भ्रांति कभी भी सत्य नहीं होती।" उसपर सिद्ध ने कहा, "हे गुरुदेव, हालाँकि पूर्णत: व्याप्त न होते हुए भी आम तौरपर इस जगत का सभी को कैसे अनुभव आता है?" उसपर

सतगुरुजी ने उसे उत्तर दिया, "इस दृश्य जगत में एक दृश्य से दूसरा दृश्य बाधित होता रहता है। इसका अर्थ यह हुआ की आँखो को दिखाई देनेवाले इस दृश्य जगत में प्रत्यक्षकारक पर प्रत्यक्षकारक ही परिणाम करता रहता है। जिस प्रकार यौवनावस्था के प्रकट होते होते बाल्यावस्था अपने आप ही नष्ट होती है। इसका अर्थ यह हुआ अगर हम यौवनावस्था को उत्तरस्थिति और बाल्यावस्था को पूर्वस्थिति समझें, तो उत्तरस्थिति के प्राप्त होते ही पूर्वस्थिती का विनाश होता है। इसीलिए अखंडता से बदलते जाने वाले इस दृश्य जगत को सत्यता प्राप्त नहीं होती।" तब सिद्ध ने सतगुरुजी से कहा, "कर्मकांड के मार्ग पर चलते समय मैं ने यह इष्टलिंग (वीरशैव या लिंगायत लोग हमेशा चाँदी के सिंधोरे में शिवलिंग रखकर उस सिंधोरे को गले में बाँधते है, इसे इष्टलिंग कहते है) धारण किया। अब ज्ञानकांड के मार्गपर चलकर ज्ञानप्राप्ति होने के पश्चात इष्टलिंग धारण करना मुझे व्यर्थ लग रहा है।" ऐसा कहते हुए सिद्ध ने गले में धारण किया हुआ इष्टलिंग निकालकर उसे सतगुरुजी के चरणों में रख दिया। उसपर सतगुरुजी ने कहा, "अरे सिद्ध, तुम्हारा यह कार्य तो शास्त्र के विरुद्ध हुआ।" सिद्ध ने कहा, "सतगुरु महाराज, शास्त्रों में लिखा गया है की, आध्यात्मिक दीक्षा मिलने के पश्चात यह शरीर भी चैतन्य रूप हो जाता है। शास्त्र में एक श्लोक है, 'लिंगमध्ये जगत्सर्वं सर्व लिंगमयं जगत् । लिंगबाह्यात्परं नास्ति तस्माल्लिंगमहं सदा,' अर्थात, यह जगत शिवलिंग में समाया हुआ है, जगत शिवलिंगरूप है, शिवलिंग के बाहर कुछ भी नहीं, इसीलिए मैं भी स्वयं शिवलिंग ही हूँ। जिसकी वृत्तियाँ निर्विकार हुई हैं और जो जीवनमुक्त है, ऐसे मनुष्य से ज्ञानप्राप्ति तथा कर्मकांड ये दोनों एकसाथ करना कदापि संभव नहीं। ऐतरेय नाम के एक ऋषि ने 'ऐतरेय अरण्यक' इस ग्रंथ के प्रथम कांड में कहा है की जिस मनुष्य को यथार्थ ज्ञानप्राप्ति हुई हो ऐसा ज्ञानी मनुष्य कर्मकांडों से पूर्णरूप से मुक्त होता है। जिस मनुष्य को ज्ञानप्राप्ति हुई हो, ऐसा मनुष्य गोत्र तथा जाति संप्रदाय के परे होते हुए विदेही (यानी देहबुद्धिरहित) होता है। ऐसा मनुष्य सदा ही ब्रह्मानंद में लीन होने के कारण उसे कर्म करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती। कर्म करने के लिए जो आवश्यक है वह देहाभिमान, कर्म के फलप्राप्ति की खोज या आसक्ति तथा कर्म को त्यागने का भय इन तीनों के

अभाव के कारण, उसे कर्म करने की आवश्यकता महसूस नहीं होती।" सिद्ध का यह कथन सुनकर सतगुरुजी ने जान लिया की सिद्ध की वृत्ति अब निर्गुण तथा अनन्य हुई है, अब इसे "सिद्धारूढ" यह नाम शोभा देता है। उसपर उन्होंने कहा, "हे सिद्धारूढ, मेरी राय में तुम अब मेरे समान ही हो। श्री मल्लिकार्जुन के प्रसाद के रूप में जो आत्मज्ञान तुम्हे प्राप्त हुआ है, वह तुम्हारे हृदय में फबता रहे और वह मुमुक्षु जनों के काम आए," ऐसा कहते हुए अति आनंद से गजदंड स्वामीजी ने सिद्ध को आलिंगन दिया। सिद्ध ने सतगुरुजी चरणों में मस्तक रखा, उस समय उसका गला रुँध आया, तब उसने कहा, "सतगुरुनाथ महाराजजी, आपने मुझे कृतार्थ किया। आपकी कृपा से इस जीवात्मा को शांति प्राप्त हुई। आपकी प्राप्ति के लिए आजतक मैं ने जो दुख सहे, आज वे सारे सार्थक हुए। आपसे मुलाकात होते ही, मेरे कई जन्मों के कष्ट एक क्षण में नष्ट हो गए।" यह कहते समय सिद्ध की आँखो से बहते हुए निरंतर आँसू देखकर सतगुरुनाथ जी ने उसे फिर एक बार गले लगाया। इस अध्याय में श्रीसिद्धारूढनाथजी को सतगुरुजी से दीक्षा मिलने का कथन किया है। जो मनुष्य यह कथा सुनेगा, उस मुमुक्षु के मन का व्दैतभाव नष्ट होकर उसे ज्ञानप्राप्ति होगी। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ कथामृत का मधुर सा यह चौथा अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ स्वामीजी के चरणोंमें अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढचरणारविंदार्पणमस्तु ॥